इकाई 24

धर्मनिरपेक्षीकरण

इकाई की रूपरेखा

24.1 प्रस्तावना

24.2 धर्मनिरपेक्षता और धर्मनिरपेक्षीकरण : एक परिभाषा

24.3 भारत में धर्मनिरपेक्षता

24.4 धर्मनिरपेक्षता और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

24.5 संविधान और धर्मनिरपेक्षता

24.6 निष्कर्ष

24.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना को परिभाषित कर सकेंगे;
- यह स्पष्ट कर सकेंगे कि धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया से क्या अभिप्राय है;
- धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना की भारतीय संदर्भ में चर्चा कर सकेंगे;
- उन कारणों का वर्णन कर सकेंगे कि धर्मनिरपेक्षता भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता क्यों बन गई; और
- भारतीय संविधान में इस संकल्पना के महत्वपूर्ण स्वरूप की चर्चा कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

यह कहा जाता है कि धर्मनिरपेक्षता से अभिप्राय है वह प्रवृत्ति जो मानव विचारधारा और अनुभव के विकास में व्यापक और बुनियादी, आदिकालीन और महत्वपूर्ण है। धर्म-निरपेक्षता धार्मिक उत्साह की अतिशयताओं से असंतोष या उनसे विरोध मात्र ही नहीं है। एनसायक्लोपेडिया ब्रिटानिका में धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा उपयोगितावादी नैतिकताओं की एक ऐसी शाखा के रूप में की गई है जिसकी रचना मानव जाति के शारीरिक, सामाजिक और नैतिक सुधार के लिए की गई है, जो धर्म के ईश्वरवादी पूर्वकथित तथ्यों की न तो पुष्टि करती है और न निषेध। यह कहना सामान्य रूप से सही होगा कि समकालीन आधुनिक जगत में कोई भी पुरुष/स्त्री अपने धर्म को एक निजी और व्यक्तिगत मामला मानता है, जो किसी अदृश्य शक्ति जिसे भगवान या और कुछ भी कहें से उसके संबंध को संचालित करता है। व्यक्ति के जीवन के अन्य क्षेत्रों में उसके कर्त्तव्यों के प्रभावी निष्पादन में यह संबंध सहायक होना चाहिए, बाधक नहीं। जीवन और विचारों के धर्म निरपेक्षीकरण की प्रक्रिया में "धर्म" का "जीवन और विचार" के अन्य क्षेत्रों से अलगाव और दूरी निहित है। इसका अनिवार्य सिद्धांत रहा है कि केवल भौतिक माध्यमों (साधनों) द्वारा ही मनुष्य के सुधार के लिए चेष्टा की जाए। धर्मनिरपेक्षता में धर्मनिरपेक्ष, सामाजिक मुद्दों और सुधारों पर विशेष बल दिया जाता है जिसके लिए सभी व्यक्तियों के सम्मिलित प्रयासों की, उनके धार्मिक संबंधन की परवाह किए बिना, आवश्यकता होती है।

महत्वपूर्ण बात यह थी कि इन धर्मनिरपेक्ष मुद्दों को धार्मिक सिद्धांतों का आश्रय लिए बिना सुलझाना था। इस प्रकार, धर्मनिरपेक्षता वृहत् रूप से ऐसा आंदोलन थी जिसका उद्देश्य पृथ्वी पर लोगों के भाग्य को बेहतर बनाना और सभी तानाशाही चाहे चर्च की हो, या किसी पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की हो, से उन्हें मुक्त करना था (हेस्टिंग्स, जे. 1954)।

व्युत्पत्तिविषयक रूप से, धर्मनिरपेक्ष (सेकुलर) शब्द लेटिन शब्द **सेकुलम** से निकला है जिसका अर्थ है "समय की महान् अवधि" या "युग की आत्मा"। बाद में इसने अलग अर्थ ग्रहण कर लिया यह था "इस जगत" से संबंधित होना। इस भाँति, दो संसारों की संकल्पना उभरकर सामने आती है अर्थात् धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक या लौकिक और आध्यात्मिक। ईसाई उपदेशों में, आध्यात्मिक क्रम को चरम सत्य के संदर्भों में निर्णायक माना जाता है। धर्मनिरपेक्षीकरण शब्द अनुवर्ती परिणाम था। यह शब्द 1648 में वेस्टफालिया (Westphalia) की शांति के पश्चात् बनाया गया था जिसका मूल रूप से अभिप्राय था धर्मसंबंधी भूमियों को नागरिक नियंत्रण के अंतर्गत स्थानांतरित करना। धर्मनिरपेक्षता ऐसी प्रक्रिया है जिसमें धार्मिक विचारधारा, प्रथाएँ और संस्थाएँ अपना सामाजिक "महत्व खो देती है"। धर्मनिरपेक्षता के बारे में बोलना धर्म के ऊपर विज्ञान की और विश्वास के ऊपर तर्क की विजय के बारे में बोलना है। धर्मनिरपेक्षता मनुष्य की तर्कबुद्धि, धार्मिक प्रथाओं, विश्वासों, प्रचलनों के प्रभाव से खुद को मुक्त करने की उसकी योग्यता का समारोह है। अतः धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है, संसार का अनिवार्य "पवित्रीकरण"। जब मनुष्य और प्रकृति तर्कसंगत — अनियत व्याख्या की वस्तु बन जाते हैं जिसमें आलौकिकता कोई भूमिका नहीं निभाती तब संसार का पवित्र रूप नष्ट हो जाता है।

24.2 धर्मनिरपेक्षता और धर्मनिरपेक्षीकरण : एक परिभाषा

"धर्मनिरपेक्षता" अत्यंत मूल्यपरक संकल्पना है, इसके मूल्य "धर्मनिरपेक्षीकरण" कही जाने वाली आधारभूत सामाजिक प्रक्रिया के बारे में हमारी समझ से संबंधित होने चाहिए। "धर्मनिरपेक्षीकरण" एक सामाजिक प्रक्रिया है और "धर्मनिरपेक्षता" सामाजिक-राजनीतिक विचार या विचारधारा है। वास्तव में "धर्मनिरपेक्षता" हमारी सामाजिक संस्थाओं में केवल वहीं तक एक यथार्थ बन सकती है जहाँ तक ये "धर्मनिरपेक्षीकरण द्वारा प्रभावित होते हैं। अतः, धर्मनिरपेक्षता, धर्म निरपेक्षीकरण का उत्पाद है और बदले में यह धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ करती है। क्योंकि यह सामान्योक्ति कि धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया के बिना कोई भी धर्मनिरपेक्षता नहीं हो सकती अब व्यापक रूप से स्वीकारी जाती है, लेकिन ठोस सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक उपायों द्वारा इसे वास्तविक रूप देने की चुनौती एक बड़ा काम है (इबिड "Ibid" 1954)।

धर्मनिरपेक्षता, सबसे बढ़कर, वेल्टानशाँग (Weltanshauung) के पुनर्जागरण और ज्ञानोदय का उत्पाद है। यह पश्चिमी व्यक्ति की इस इच्छा की अभिव्यक्ति थी कि वह अपना जीवन चर्च के प्रभुत्व से मुक्त रहकर स्वतंत्र रूप से गुजारना चाहता था जो मध्यकालीन पश्चिमी समाज में व्याप्त लक्षण था। धर्मनिरपेक्षता इस दुनिया में जीवन के महत्व और वास्तविकता को तथा सभी धर्मनिरपेक्ष मामलों में विज्ञान और तर्क के अधिकार की पुष्टि करती थी (भरूचा, आर., 1994)।

"धर्मनिरपेक्ष" शब्द का 1851 में जॉर्ज जेकब होलोएक ने उस सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन का वर्णन करने के लिए आविष्कार किया जिसे स्वयं उन्होंने, तथा चार्ल्स ब्राडलॉघ और अन्य लोगों ने प्रारंभ किया था। जी.जे. होलोएक ने निरपेक्षता शब्द का प्रयोग एक विचारधारा को परिभाषित करने के लिए किया, जिसमें उन सामाजिक और औद्योगिक नैतिकताओं को जो अभी तक धर्म के अतींद्रिय सिद्धांतों के संदर्भ द्वारा निर्धारित होती थीं, अब तर्क द्वारा निर्धारित किया जाना था, और मनुष्य के इस जीवन में उसकी

भलाई के लिए सुदृढ़ता से स्थापित करना था। धर्मनिरपेक्षता को तदनंतर बुद्धिवादी आंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया गया जो अज्ञेयवादी या धर्म से उदासीन था (गौस, 1908)।

होलोएक की धर्मनिरपेक्षता, एक सरल विचार था, जो मानवतावादियों और प्रत्यक्षवादियों दोनों द्वारा समान रूप से व्यक्त धारणा के अनुसार, इस दुनिया में जीवन के प्रति चिंता को पुष्ट करता था। धर्मनिरपेक्षता इस सांसारिक अस्तित्व, वैज्ञानिक ज्ञान की स्वतंत्रता और मनुष्य की प्रसन्नता के महत्व को ही सामाजिक संस्थाओं के वैध उद्देश्यों के रूप में पुष्ट करती है। होलोएक ने धर्मनिरपेक्षता को "सोचने का एक तरीका" के रूप में वर्णन किया जो "उन मुद्दों से सरोकार रखता है जिनकी इसी जीवन में जाँच की जा सकती है" (झींगरन, एस. 1995 : 53)।

इरिस एस, वॉटर हाउस, के अनुसार धर्म के साथ धर्मनिरपेक्षता के संबंध को "प्रतिकूल के बजाय पारस्परिक रूप से विशिष्ट" माना जाता था। धर्मनिरपेक्षता की एकमात्र चिंता यही है कि इस संसार को अनुभव और तर्क द्वारा जाना जाए। यह "दूसरी दुनिया" या मृत्यु के बाद जीवन के बारे में चिंता नहीं करती; और इन मामलों के बारे में कोई भी विचार न तो प्रस्तुत करती है न किसी विचार का निषेध करती है, यह ऐसे प्रश्नों को धर्मशास्त्र के लिए छोड़ना चाहती है और आस्तिकता तथा नास्तिकता दोनों के प्रति समान रूप से उदासीन है। "धर्मनिरपेक्षता" शब्द को अपनाने से पहले होलोएक ने निदिज़्म ("Netheism") और "सीमावाद" शब्दों पर भी विकल्पों के रूप में विचार किया था। होलोएक, प्रत्यक्ष रूप से स्वतः धर्म के निषेध की बजाय, ईसाई धर्म के अविवेक का प्रतिकार करने में अधिक रुचि रखता था। उसका दूसरा उद्देश्य था व्यक्ति के महत्व और प्रतिष्ठा की पुष्टि और धर्मनिरपेक्ष जीवन की स्वायत्तता (Ibid पृष्ठ 37)।

पश्चिम में धर्मनिरपेक्षीकरण की शुरुआत को कुछ लोगों ने तो "आधुनिक व्यक्ति की धार्मिक संरक्षण से मुक्ति" कहकर प्रशंसा की वहीं कुछ अन्य लोगों ने इसे "ईसाइकरण, विधर्मी बनाय जाना आदि" कहकर शोक व्यक्त किया। लेकिन ऐतिहासिक रूप से समाज वैज्ञानिकों के लिए धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया पश्चिम में आधुनिकता के उदय से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है और कुछ लोग इसे "पिछले सैकड़ों वर्षों का शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास" मानेंगे (ओ, डी, टी (O'Dea, T) 1966)। पारंपरिक चर्च-उन्मुख धर्म में हाल ही में हुए प्रत्यक्ष ह्रास के कारण धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ी और वर्तमान पराकाष्ठा की स्थिति में पहुँची। फिर भी यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके मूलाधार प्रमुख धर्मों की नींव से ही जुड़े हुए हैं और वस्तुतः यह उस विशिष्ट तथ्य से ही एक अस्पष्ट और द्वंद्वात्मक संबंध रखती है जिसे यह तथाकथित रूप से क्षति पहुँचाती है। इस परिप्रेक्ष्य में, धर्मनिरपेक्षता इस हद तक एक पश्चिमी संकल्पना है कि धर्मनिरपेक्षीकरण वह प्रक्रिया है जो पश्चिमी समाज में स्थित है।

ब्रायन विल्सन ने "धर्मनिरपेक्षीकरण" को ऐसी प्रक्रिया कहकर परिभाषित किया है जिसमें विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ ऐसी "विशिष्ट संस्थाओं के रूप में मान्यता प्राप्त करती हैं जो पर्याप्त स्वायत्तता से कार्य संचालन करतीं हैं"। यह "धार्मिक गतिविधियों, विश्वासों, सोचने के तरीके और संस्थाओं में ह्रास" की प्रक्रिया भी है। धार्मिक चेतना में होने वाला यह ह्रास धर्मनिरपेक्ष मुद्दों के प्रति व्याहवारिक या वैज्ञानिक दृष्टिकोण की विश्वव्यापी स्वीकृति का परिणाम है। एक धर्मनिस्पेक्ष समाज में लोग प्राकृतिक तथ्य की व्याख्या हेतु और अपनी सांसारिक समस्याओं के लिए उपचारी उपायों हेतु विज्ञान के आश्रय में जाते हैं। वे संसार की संज्ञानात्मक जानकारी के लिए या भावनात्मक सहयोग के लिए भी अब "आलौकिक" का सहारा नहीं लेते। परिणामस्वरूप, "पश्चिम में धर्म पहले की तरह व्यापक या निर्णायक प्रभाव न रहकर, सामान्यतः सामाजिक व्यवस्था का विभाग बन गया है" (एलिआड, एम. अंक 13. पृष्ठ 160)।

अपनी दूसरी कृति में विल्सन ने धर्मनिरपेक्षता या धर्मनिरपेक्ष समाज की तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है। ये हैं :

क) सहायक (यंत्रीय) मूल्यों का प्रचलन

ख) विवेकपूर्ण कार्यप्रणालियाँ

ग) प्रौद्योगिकीय विधियाँ

विल्सन ने धर्मनिरपेक्ष समाज को इस रूप में भी परिभाषित किया है "धार्मिकता की भावना, जीवन की पवित्रता और गहन धार्मिकता की भावना सर्वाधिक स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है।" (विल्सन, बी.आर., 1969) आइए देखें कि भारतीय समाज के संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना को कैसे समझा गया है।

24.3 भारत में धर्मनिरपेक्षता

प्रांरभ से ही, भारतीय धर्मनिरपेक्षता ने बहुलवाद से अपनी शक्ति ग्रहण की। भारतीय परंपरा में धर्मनिरपेक्षता धर्म का विरोध नहीं थी, लेकिन सांप्रदायिकता से संबंधित थी जबकि यूरोप, एक धर्मी था, अतः वहाँ धर्मनिरपेक्षता सांप्रदायिकता के विपरीत नहीं थी क्योंकि वहाँ विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच प्रभुत्व के लिए कोई संघर्ष नहीं था। धर्मनिरपेक्षता की पश्चिमी और भारतीय संकल्पनाओं के बीच यही निर्णायक अंतर है। यूरोप में ईसाइयों और चर्च के बीच झगड़ा था, जबकि भारत में एक धार्मिक समुदाय और दूसरे धार्मिक समुदाय के बीच झगड़ा था। भारत में दोनों समुदायों के समझदार नेताओं ने किसी भी अवस्था पर किसी भी समुदाय के धार्मिक अधिकार पर प्रश्न उठाए बिना ही सत्ता की भागीदारी में न्याय किए जाने पर बल दिया (नारायण, 1. 1995)।

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश शासकों के प्रभाव के अंतर्गत भारतीयों का धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना से परिचय हुआ। भारत में पहले धर्मनिरपेक्षता के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। यूरोप के विपरीत, भारत में कोई पुनर्जागरण आंदोलन नहीं हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब विद्रोह असफल हो गया और अंग्रेजों ने अपने शासन को समेकित किया तभी भारतीय जनता ने पश्चिमी प्रभावों पर ध्यान देना शुरू किया। लेकिन पश्चिमी विचार शहरी क्षेत्रों में भारतीयों के केवल छोटे हिस्से में ही लोकप्रिय हो सके। ब्रिटिश शासन अनिवार्य रूप से धर्मनिरपेक्ष था, क्योंकि उन्होंने कई धार्मिक कानूनों की जगह पर धर्मनिरपेक्ष कानूनों को लागू करना शुरू कर दिया। उन्होंने सामान्य अपराधिक संहिता को भी अधिरोपित कर दिया, यद्यपि उन्होंने व्यक्तिगत कानूनों को नहीं छुआ। भारतीयों के लिए यह नया अनुभव था। अभी तक वे हमेशा धार्मिक कानूनों और परंपराओं का पालन करते थे। तब तक भारत में धर्मनिरपेक्ष कानून की कोई संकल्पना विद्यमान नहीं थी। इन कानूनों और परंपराओं से किसी भी प्रकार के व्यतिक्रम (विचलन) की दृढ़ता से निंदा की जाती थी। ऐसा करने पर सामाजिक बहिष्कार और जाति, धर्म बहिष्कार जैसे दंड दिए जाते थे। हिंदुओं में तो वस्तुतः जाति नियमों का बड़ी कड़ाई से पालन किया जाता था।

राजनीतिक अर्थ में "धर्मनिरपेक्ष" शब्द का प्रयोग 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के पश्चात् हुआ। भारतीय सजनीतिक शब्दावली में धर्मनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग बहुवादी व्यवस्था में होना शुरू हुआ पश्चिमी अर्थ में नहीं, जो धर्म के प्रति उदासीनता का सूचक था। यह तो हम जानते ही हैं कि पश्चिम में धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना चर्च और राजनीतिक शासकों के बीच संघर्ष के परिणाम के रूप में उभरी थी। चर्च का राजनीति पर प्रभुत्व था और यूरोप के विभिन्न हिस्सों में चर्च द्वारा पदासीन राजतंत्र को स्वतंत्रता नहीं दी जाती थी। अतः इस संघर्ष के परिणाम के रूप में यूरोप में धर्मनिरपेक्ष राज्य की संकल्पना उभरी। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यूरोपीय समाज, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों हेतु, एक-धर्मी समाज था। अतः पश्चिमी संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता का अत्यधिक भिन्न

अर्थ था। यह अनिवार्य रूप से ऐसे राजनीतिक प्राधिकार की सूचक थी जो चर्च से पूरी तरह से स्तवंत्र था। जैसे पश्चिम में धार्मिक अधिकारवाद के विरुद्ध धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना उभरी, भारत में यह संकल्पना धार्मिक बहुलवाद के संदर्भ में उभरी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने धार्मिक अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुस्लिमों की आशंकाओं को शांत करने के लिए धर्मनिरपेक्षता पर बल दिया और स्पष्ट किया कि यह कोई हिंदू राजनीतिक रचना नहीं थी। यह धार्मिक प्राधिकार की बजाय धार्मिक समुदाय था जो भारतीय संदर्भ में महत्वपूर्ण था (इंजीनियर और मेहता : 1998)।

सोचे और करें 24.1

अपने समुदाय में विभिन्न जाति, वर्ग, व्यवसाय और धर्म से संबंधित पाँच लोगों से साक्षात्कार करिए। उनसे इस बारे में उनके विचार पूछिए कि भारत "धर्मनिरपेक्ष" समाज है या नहीं?

इस साक्षात्कार के परिणाम पर दो पृष्ठों की रिपोर्ट लिखिए जिसमें साक्षात्कार किए गए व्यक्तियों के विचारों की और अपने विचारों की तुलना करिए। अपनी रिपोर्ट की अपने अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों की रिपोर्ट से तुलना कीजिए।

एकदम प्रारंभ से ही भारतीय संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ बिलकुल अलग था। यह धर्म और उसके अधिकार की बजाय समुदाय और उसके धर्मनिरपेक्ष हितों से अधिक संबंधित था। अपने पूरे स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हमको धर्मनिरपेक्ष/सांप्रदायिक द्विभाजन का सामना करना पड़ा। लेकिन हमारे किसी भी राजनीतिक नेता ने किसी धार्मिक अधिकार, हिंदू या मुस्लिम को चुनौती देने के बारे में नहीं सोचा। इसके विपरीत, ये नेता बार-बार यही आश्वासन देते रहे कि हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को अपने अपने धर्मों को वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही रूपों में अपने विश्वास को अभिव्यक्त करने और अनुष्ठान आदि करने की स्वतंत्रता होगी। केवल यही नहीं, राजनीतिक नेतृत्व ने विद्यमान धार्मिक संस्थाओं का प्रयोग हिंदू और मुस्लिम जनसमूह को राजनतीक प्रक्रियाओं में लाने के लिए भी किया। इस प्रकार तिलक ने शिवाजी और गणेश उत्सवों का प्रयोग हिंदू जनसमूह में राजनीतिक चेतना लाने के लिए किया। गांधीजी ने भी, एक ओर तो हिंदू समूह को आकर्षित करने के लिए "राम राज्य" की संकल्पना का प्रयोग किया और दूसरी ओर, मुस्लिम जनसमूह को आकर्षित करने के लिए खिलाफत आंदोलन का प्रयोग किया। राजनीतिक कार्यवाही की ओर लोगों को प्रेरित करने के लिए धर्म और धार्मिक संस्थाओं का बार-बार प्रयोग किया गया। इस भाँति, भारतीय निरपेक्षता का धर्म या धार्मिक प्राधिकार के साथ कभी भी विरोध नहीं हुआ। इसके विपरीत, इसने धर्म और धार्मिक संस्थाओं का राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रबल करने के लिए सहारा लिया।

1920 के दशक में महात्मा गांधी के आगमन से जब स्वतंत्रता आंदोलन का आधार विस्तृत हुआ और महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में जन विरोध की जो तकनीकें विकसित की थीं उनको और अधिक उत्तम सूक्ष्म बनाने के लिए जब वे आगे बढ़े, तब पिछले सीमांत समूहों को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल किया गया और भारतीय समाज स्वतंत्रता की पुकार के प्रभाव से जुड़ गया। लेकिन, विरोधाभासी रूप से, उसी काल में मूलतत्ववादी और कट्टर समूहों का आगमन भी दिखाई दिया, जो हिंदू और मुसलमान दोनों ही थे और जिन्होंने धर्म का राजनीतिकरण करना और इस प्रकार भारतीय समाज को विभाजित करना प्रारंभ कर दिया। और, आज जैसा हमने पूरी दुनिया में देखा है, धार्मिक पहचान अकसर राजनीतिक आंदोलन का उत्पाद होती है न कि ऐसे आंदोलन के लिए पूर्व शर्त। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि हमने भारत में समानांतर आंदोलन देखें, एक वह जिसने उपनिवेश-विरोधी संघर्ष के समान लोगों को जोड़ा और दूसरा वह जिसने धर्म के नाम पर लोगों को विभाजित किया।

24.4 धर्मनिरपेक्षता और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

स्वतंत्रता संघर्ष के नेतृत्व को इस कारण, एक ऐसा सिद्धांत बनाना था जो विभिन्न विश्वासों का समर्थन करने वाले लोगों को संयुक्त रख सके। एकत्रित रखने की यह विधि धर्मनिरपेक्षता द्वारा उपलब्ध हुई। दूसरी ओर, राष्ट्रवादी आंदोलनों ने संयुक्त, स्वतंत्र भारत के लक्ष्य हेतु उपनिवेशी सरकार से लड़ाई की। अपने राष्ट्रवादी संघर्ष में इसने सभी धार्मिक समूहों की सहायता माँगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह ऐसी धर्मनिरपेक्षता नहीं थी जो धर्म और राजनीति के अलगाव का आदेश देती है बल्कि यह ऐसी धर्मनिरपेक्षता थी जो सभी विश्वासों की समानता को सुनिश्चित करती है सर्व धर्म संभाव (चंदोक, एन. 2004)।

भारत के राष्ट्रीय जीवन पर सांप्रदायिकता का विध्वंसकारी प्रभाव पड़ा, जिसकी अंतिम परिणति देश के विभाजन और बड़े पैमाने पर हुए सांप्रदायिक दंगों के रूप में हुई। इस कारण, इसे राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता दोनों के लिए सबसे बड़ी चुनौती, या इनका निषेध तक माना गया। राष्ट्रवादी नेताओं ने जल्दी ही इस बात को समझ लिया कि उन्हें दो शत्रुओं — एक ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों और दूसरा, भारत के अंदर सांप्रदायिकता, से एक साथ लड़ना होगा। धर्मनिरपेक्षता में उन्होंने वह विचारधारा देखी जो उनके दोनों उद्देश्यों अर्थात् सांप्रदायिकता से लड़ाई या उसका खंडन करना और संयुक्त भारत के लिए आधार प्रदान करना, को पूरा कर सकती थी, जिनसे भारत की स्वतंत्रता का राष्ट्रवादी आंदोलन मजबूत हो सकता था।

एक राष्ट्र केवल तभी विद्यमान रह सकता है जब जनता के सभी वर्ग सामान्य राष्ट्रीयता की भावना की भागीदारी करें और अपनी सीमित, क्षेत्रीय, जातीय, भाषायी या धार्मिक पहचानों को उस सीमा तक बढ़ा लें। नेहरू का कथन है, "संभवतः, राष्ट्रीय चेतना की सर्वाधिक आवश्यक विशेषता है एक साथ संबंधित होने की भावना और बाकी लोगों का एक साथ मुकाबला करना" (स्मिथ डी.ई., 1963) चूँकि राष्ट्रीय चेतना के आविर्भाव में सांप्रदायिक निष्ठाएँ सबसे बड़ी बाधा हैं अतः धर्मनिरपेक्ष विचारधारा को ही राष्ट्रीय चेतना का आधार बनाया जा सकता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय राष्ट्रवाद में अत्यधिक उत्थान हुआ। कांग्रेस के नेतृत्व वाले राष्ट्रवादी आंदोलन में विभिन्न विचारों वाले लोगों को शामिल किया गया। अतः यह सांप्रदायिक तत्वों से पूरी तरह मुक्त नहीं था, लेकिन इसमें राष्ट्रवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक विचारधारा पर विशेष बल दिया गया था।

उस काल के समाज सुधारकों और पुनरुज्जीवनवादियों की विचारधाराओं के विपरीत, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति अपने दृष्टिकोण में धर्मनिरपेक्ष थे। कांग्रेस के संस्थापकों के लिए राष्ट्रीय पहचान और राष्ट्र के हित पूर्ण रूप में सर्व समावेशी थे और धर्म, जाति, भाषा आदि की विभिन्नताओं से परे थे। कांग्रेस के द्वितीय सत्र (1886) की रिपोर्ट ने इसके धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रवादी स्वरूप को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया :

"कांग्रेस लौकिक हितों का समुदाय है, आध्यात्मिक धारणाओं का नहीं, जो मनुष्यों को राजनीतिक प्रश्नों की चर्चा में एक दूसरे का प्रतिनिधित्व करने योग्य बनाता है। हम इस देश में उनके एक समान सामान्य हितों का विचार करते हैं। हिंदू, ईसाई, मुसलमान और पारसी अपने अपने समुदायों के सदस्यों के रूप में जनता के धर्मनिरपेक्ष मामलों की चर्चा में एक दूसरे का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं" (स्मिथ डी.ई., 1993)।

अपने अस्तित्व के पहले दशकों के दौरान, कांग्रेस में दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और गोपालकृष्ण गोखले जैसे नेताओं का प्रभुत्व था। उन्हें नरमदलीय के रूप में जाना

जाता था जो तर्कबुद्धिवाद, धर्मनिरपेक्षता, संविधानवाद और उदारतावाद में विश्वास रखते थे। धीरे-धीरे उनका स्थान अधिक अतिवादियों (गरम दलीय) नेताओं जैसे बिपिनचंद्र पाल, बी.जी. तिलक, और लाला लाजपत राय ने ले लिया। ये नेता प्रबल राष्ट्रवादी थे, लेकिन उनके भाषणों और क्रियाओं में धार्मिक पुट था, जैसे शिवाजी और राणा प्रताप का आदर्शीकरण करना और दुर्गा एवं गणेश से जुड़े धार्मिक उत्सवों को लोकप्रिय बनाना। बिपिन चंद्र ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि मुस्लिम नेताओं के मोरचे में राष्ट्रवाद से हट कर साम्प्रदायिक मोरचे की ओर परिवर्तन; और "अतिवादी" नेताओं के भाषणों और कार्यकलापों में धार्मिक पुट का शामिल होना (नरमपंथियों के तार्किक, उदार दृष्टिकोण की तुलना में) ये दोनों ही परिवर्तन जन राजनीति की बाध्यताओं के कारण थे। वे सभी यह बात जानते थे कि जनसमूह के लिए धर्मनिरपेक्ष विचारधारा की अपेक्षा धार्मिक मुहावरे, प्रतीक तथा धर्म खतरे में है, इस प्रकार की बातें करना ज्यादा असरदार सिद्ध होगा (गांधी, एम.के., 1999)।

धार्मिक पुट के बावजूद, कांग्रेसी नेताओं का राष्ट्रवाद हिंदू उग्रराष्ट्रवादियों और अन्य सांप्रदायिकतावादियों से काफी भिन्न था। राष्ट्र के बारे में उनकी संकल्पना क्षेत्रीय थी, अथार्त् इसमें भारत के सभी निवासी चाहे वह किसी भी धार्मिक मत के हों, या उनमें और भी किसी प्रकार की भिन्नताएँ हों, शामिल थे। उन्होंने भारत के सभी निवासियों के लिए, चाहे उनका धर्म कोई भी हो, स्थिति की समानता पर बल दिया। गांधी ने बार-बार इस बात की पुष्टि की "भारत में चूँकि विभिन्न धर्मों से संबंधित लोग रहते हैं इसका यह अर्थ नहीं है कि यह एक राष्ट्र नहीं रहेगा। यदि हिंदू यह मानते हैं कि भारत में केवल हिंदू ही रहने चाहिए तो वे सपनों की दुनिया में रह रहे हैं। हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई जिन्होंने भारत को अपना देश बनाया है वे सभी हमारे सह देशवासी हैं। विश्व के किसी भी हिस्से में राष्ट्रीयता और धर्म समानार्थक नहीं हैं, और भारत में भी ऐसा कभी नहीं हुआ है" (गाँधी एम.के., 1999)।

भारतीय राष्ट्रवाद और तथाकथित "हिंदू और मुस्लिम राष्ट्रवाद" के बीच दूसरा बुनियादी अंतर हिंदू और मुसलमानों के धर्म के प्रति अपने अपने नजरिए में निहित है। "हिंदू और मुस्लिम राष्ट्रवाद" ने तो व्यक्ति और समुदाय दोनों के अस्तित्व और अपने सभी धर्म निरपेक्ष हितों के लिए धर्म को आधार बनाया परंतु भारतीय राष्ट्रवाद ने दावे के साथ कहा कि भारत के राष्ट्रत्व के लिए धर्म अप्रासंगिक है। यद्यपि दो नेहरू नेताओं को छोड़ कर, सभी राष्ट्रवादी नेता धार्मिक व्यक्ति थे, जो धर्म को मानवजीवन का एक उपयुक्त आयाम मानते थे लेकिन इसी के साथ-साथ उन्होंने धर्म को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय सरोकारों से अलग रखने की आवश्यकता का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि राष्ट्रीय एकीकरण, या राष्ट्रीय तादात्म्य की भावना केवल तभी हासिल हो सकती है जब भारतीय अपनी धार्मिक पहचानों को एक ओर रख दें और स्वतंत्रता की लड़ाई में हाथ से हाथ मिला लें। "निम्न" जाति के हिंदुओं को वृहत् हिंदू समाज में एकीकृत करने के महात्मा के प्रयास एवं मुसलमानों और अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों को राष्ट्रीय मुख्यधारा में लाने के उनके प्रयास काफी हद तक राष्ट्रवादी नेताओं की विचारधारा की अभिव्यक्ति थे। यह दृष्टिकोण सांप्रदायिकता को तो पूरी तरह नकारता था, लेकिन व्यक्ति के जीवन में धर्म के महत्व और वांछनीयता को स्पष्ट रूप से स्वीकृति देता था।

इसके अलावा, धर्म भारतीय सिद्धांतानुयायिओं और राष्ट्रवादी नेताओं के लिए हौवा नहीं था जैसा सुधारोत्तर पश्चिम में था। भारत में धर्म ने वैज्ञानिक खोजों के बारे में या दैनिक जीवन की वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी के बारे में सवाल पूछने का कभी भी प्रयास नहीं किया। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि स्वतंत्रता से पहले के निर्णायक दशकों के विद्वानों और राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा धर्म को कभी भी भारतीय जनसमूह की दुखद स्थितियों का कारण या स्रोत नहीं माना गया। बल्कि उपनिवेशी शासन को लोगों के पिछड़ेपन और

दुख का मुख्य या एकमात्र स्रोत माना जाता था। भारत की समस्याओं का हल, धर्म को नकारने की बजाय स्वराज की प्राप्ति में देखा गया।

गाँधी से लेकर पटेल और आजाद तक अधिकांश राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा अलग-अलग धार्मिक समुदायों के विद्यमान होने के तथ्य की स्वीकृति पर तो बल दिया जाता लेकिन इसी के साथ-साथ वे इस तथ्य को तटस्थ भी करना चाहते थे और इसके लिए वे एक राष्ट्र-समाज में उनके शांतिपूर्ण अस्तित्व की आवश्यकता और महत्व पर जोर देते थे। दूसरी ओर, नेहरू के लिए धार्मिक पहचान महत्वपूर्ण नहीं थी। वे विभिन्न धार्मिक समुदायों के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की बजाय धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय पहचान पर जोर देते थे। इस प्रकार, भारतीय राष्ट्रवाद इस दृष्टिकोण पर आधारित था कि कोई राष्ट्र उन लोगों से निर्मित होता है जिनकी रोजमर्रा की आम समस्याएँ साझी होतीं हैं, और जो स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक अधिकार और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक साथ मिल कर प्रयास करते हैं (स्मिथ डी.ई., 1963)।

भारतीय राष्ट्रवाद एक धर्मनिरपेक्ष आधार बिंदु से भी घनिष्ठ रूप से संबद्ध था। शुरू से ही सांप्रदायिकता, या धर्म और राजनीति के बीच मैत्री को राष्ट्रवादी आंदोलन और राष्ट्रीय एकीकरण दोनों के लिए सबसे बड़े खतरे के रूप में देखा जाता था। भारतीय धर्म निरपेक्षता की समूची संकल्पना सांप्रदायिक रेखाओं पर विभाजित विषमजातीय जनसमूह को एक आधुनिक राष्ट्र में एक साथ जोड़ने के प्रयास की प्रक्रिया में विकसित हुई थी। इसके लिए सांप्रदायिकता को पूरी तरह से नकारने और राजनीति तथा अन्य धर्मनिरपेक्ष संस्थाओं को धर्म से अलग करने की आवश्यकता का समर्थन करने की जरूरत थी। नेहरू का कथन था "सांप्रदायिकता के रूप में धर्म और राजनीति का गठबंधन सबसे अधिक खतरनाक है और यह सबसे अधिक असामान्य स्वरूप का अवैध समूह उत्पन्न करता है"। (स्मिथ डी.ई., 1963)।

धर्मनिरपेक्षता को सांप्रदायिकता का निषेध माना जाता था और इसका तात्पर्य था धर्म और राजनीति का अलगाव। डी.ई. स्मिथ के अनुसार "भारतीय राष्ट्रवाद की मुख्य धारा ने धर्म और राजनीति के अलगाव का आश्वासन दिया : भारत के धार्मिक बहुलवाद और राजनीतिक एकता के साथ स्वतंत्रता के लक्ष्य के बीच कोई संघर्ष नहीं था।

भारत में धर्मनिरेपक्षता की आवश्यकता उठी और तदनुसार धर्मनिरपेक्षता दो संबंधित संदर्भों में अभिव्यक्त हुई : पहला, राष्ट्रीय अखंडता के लिए मुकाबला करना और दूसरा, राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता के लिए ऐसा आधार प्रदान करना जिसमें सभी भारतीय भागीदारी करें।

सतीश चंद्र का कहना है कि राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं की दो मुख्य चिंताएँ थीं "भारत के राष्ट्रत्व का स्वरूप और वह आधार जिस पर भारत की एकता बनाए रखी जा सके" उनके अनुसार "धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना इसी संदर्भ में उठी"। इसकी कोशिश थी कि विभिन्न समुदायों के हितों के बीच मध्यस्थता की जा सके और यह संयुक्त भारतीय राज्य बनाने की माँग करती थी जहाँ किसी भी धर्म के अनुयायियों का न तो समर्थन किया जाए और न ही किसी के साथ भेदभाव हो। इस प्रकार, यूरोप के विपरीत, भारत में धर्म निरपेक्षता संगठित धर्म के साथ संघर्ष की प्रक्रिया के रूप में नहीं उठी, बल्कि यह एक ऐसे प्रयास के रूप में उठी जिसमें धर्मनिरपेक्षता को संयुक्त स्वतंत्र भारत का आधार वाक्य बनाकर भारत में विभिन्न धर्मों के अनुपालकों को विदेशी शासकों के विरुद्ध उनके संघर्ष में एकीभूत कर दिया जाए।

अतः इस प्रयास में धर्म के विरोध पर बिलकुल जोर नही दिया गया बल्कि सभी धार्मिक समूहों द्वारा धर्मनिरपेक्ष जीवन में इससे सामंजस्य स्थापित करने पर बल दिया गया था।

इसका विचार सभी धार्मिक समूहों द्वारा धार्मिक राष्ट्रीय जीवन का था। **सर्व धर्म संभाव** या सभी धर्मों का बराबर सम्मान करने के संदर्भ में धार्मिक सहिष्णुता का विचार धर्मनिरपेक्षता की भारतीय संकल्पना के लिए निर्णायक हो गया, क्योंकि इसने एक राष्ट्र-राज्य में अनेकों धार्मिक समुदायों के सामंजस्यपूर्ण अस्तित्व को संभव बना दिया। यह अपेक्षा की गई कि सांप्रदायिकता या अपने धार्मिक समुदाय के प्रति अतिशय निष्ठा का मुकाबला सभी धर्मों के लिए समान आदर रखने के सकारात्मक आदर्श द्वारा किया जा सकता है।

सोचे और करें 24.2

अपने घर के नजदीक के किसी पुस्तकालय में या अध्ययन केंद्र के पुस्तकालय में जाइए और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर लिखी पाठ्य पुस्तकों को ढूँढ़ कर पढ़िए।

"भारत का स्वतंत्रता के लिए संघर्ष और धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग" पर लगभग दो पृष्ठों का निबंध लिखिए। अपने निबंध की तुलना अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों के निबंध से करिए।

भारतीय नेतृत्व ने इस तथ्य के बावजूद कि देश धर्म के नाम पर प्रकट रूप से विभाजित हो गया था, इस नियामक सिद्धांत को पकड़ के रखा। भारतीय समाज के गहन ध्रुवीकरण को देखते हुए और देश के विभाजन के दौरान हुई भारी सामूहिक हत्याओं और पाशविकताओं को देखते हुए, हो सकता था कि नेता लोग बहुसंख्यकवाद की दिशा में आसानी से चले गए होते। लेकिन उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया और वे अपनी इस प्रतिबद्धता के प्रति सच्चे रहे कि स्वतंत्रोत्तर भारत में सभी धर्मों के साथ राज्य द्वारा समानता का व्यवहार किया जाएगा।

अतः, धर्मनिरपेक्षता ऐसा नियम (मानक) थी जिसने जनसमूह को सम्मिलत करने की प्रेरणा दी जिसने देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ाई की; इसने संविधान सभा में होने वाली बहसों को प्रेरित किया और संविधान को आधार बनाया। धर्मनिरपेक्षता के इसी अर्थ को संविधान में ठोस आकार दिया गया।

यह जानना जरूरी है कि धर्मनिरपेक्षता का प्रथम सिद्धांत जो संविधान में संहिताबद्ध किया गया था, यह आश्वासन देता था कि मूलभूत अधिकारों के अधिनियम के अनुच्छेद 25 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का अनुपालन करने की स्वतंत्रता थी। इसका यह मानना था कि धर्म को हतोत्साहित करने की इसकी कोई मंशा नहीं है। नेहरू ने कहा, "हम अपने राज्य को धर्मनिरपेक्ष राज्य कहते हैं। लेकिन किसी अच्छे शब्द के अभाव में हमने इसी का प्रयोग किया है। इसका सही-सही अर्थ क्या है? निश्चय ही इसका अर्थ वह राज्य नहीं है जहाँ धर्म को ही हतोत्साहित किया जाता हो। इसका अर्थ है धर्म और विवेक की स्वतंत्रता, जिसमें उन लोगों के लिए स्वतंत्रता भी शामिल है जिनका कोई धर्म न हो"।

दरअसल अब धार्मिक स्वतंत्रता पाने के लिए हमें धर्मनिरपेक्षता की घोषणा करने की जरूरत नहीं है। यह स्वतंत्रता तो उन मौलिक अधिकारों का हिस्सा बन सकती है जिनको मिलने का प्रत्येक नागरिक को आश्वासन दिया गया है और उन्हीं से उभर सकती है। लेकिन कोई भी धर्मनिरपेक्ष राज्य धर्म का अधिकार प्रदान करने पर ही ठहर नहीं सकता। धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत इससे भी आगे जाता है और सभी धार्मिक समूहों के बीच समानता स्थापित करता है। सभी धर्मों की समानता की संकल्पना सर्व धर्म संभाव के धर्म सिद्धांत द्वारा प्रेरित हुई थी जिसने गाँधीजी की धार्मिक सहिष्णुता की धारणा का प्रसार किया था।

बॉक्स 24.1 : धर्मनिरपेक्षता पर डॉ. राधाकृष्णन के विचार

डॉ. राधाकृष्णन ने धर्मनिरपेक्षता के बारे में अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया:

हमारा यह मानना है कि किसी भी एक धर्म को वरीयता की स्थिति, या विशिष्टता नहीं दी जानी चाहिए, न ही किसी एक धर्म को राष्ट्रीय जीवन में या अंतरराष्ट्रीय संबंधों में कोई विशेषाधिकार दिए जाने चाहिए क्योंकि यह लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धांतों का उल्लंघन होगा और धर्म तथा सरकार के सर्वोत्तम हितों के विपरीत होगा ..... नागरिकों के किसी भी समूह को अपने लिए उन अधिकारों और विशेषाधिकारों का झूठा दावा नहीं करना चाहिए जिन्हें यह दूसरों को देने से मना करता है। कोई भी व्यक्ति अपने धर्म के कारण किसी भी प्रकार के भेदभाव या अक्षमता से पीड़ित नहीं होगा बल्कि सभी व्यक्ति सामान्य जीवन में भरपूर मात्रा में भागीदारी करने के लिए स्वतंत्र होंगे" (राधाकृष्णन, एस., 1956)।

अब क्योंकि धार्मिक स्वतंत्रता को अपनी सहायता के लिए धर्मनिरपेक्षता की आवश्यक रूप से जरूरत नहीं होती तो धर्म की समानता को अनुच्छेद 14 के अनुसार समानता के मौलिक अधिकार द्वारा स्थापित किया जा सकता है लेकिन यदि हम यहीं पर रुक जाते हैं तो धर्मनिरपेक्षता अनावश्यक बना दी जाएगी। क्योंकि धर्मनिरपेक्षता समानता और स्वतंत्रता से कहीं आगे होती है और यह घोषित करती है कि राज्य किसी विशिष्ट धर्म से नहीं संबद्ध है। **यह विशिष्ट प्रतिबद्धता ही वह तत्व है जो एक धर्मनिरपेक्ष राज्य, या धर्म निरपेक्षता के प्रत्यायक (प्रमाण-पत्र) सुस्थापित करता है।** हम कह सकते हैं कि स्वतंत्रता और समानता के प्रावधानों को आगे बढ़ाना यह अनुबंध करता है कि राज्य सभी धार्मिक समूहों से सैद्धांतिक दूरी रखने का रुख बनाए रखेगा। इसके द्वारा यह अनुबंध भी किया जाता है कि राज्य खुद को किसी विशिष्ट-धर्म, खास तौर से बहुसंख्यक धर्म से न तो संबद्ध रखेगा, और न ही अपने किन्हीं धार्मिक कार्यों को जारी रखेगा।

जवारहलाल नेहरू ने एक अवसर पर कहा "हिंदी में "सेक्युलर" के लिए शायद एक अच्छा शब्द ढूँढ पाना भी मुश्किल होगा। कुछ लोग सोचते हैं कि इसका अर्थ है धर्म के विपरीत कोई चीज। परंतु यह बिलकुल सही नहीं है। इसका अर्थ है कि यह एक ऐसा राज्य है जो सभी विश्वासों का समान रूप से आदर करता है और सभी को समान अवसर प्रदान करता है; और यह एक राज्य के रूप में किसी एक ऐसे विश्वास या धर्म से खुद को जुड़ने की स्वीकृति नहीं देता, जो ऐसा करने से राज्य धर्म बन जाता है।" धर्मनिरपेक्षता का दूसरा और तीसरा घटक अर्थात् सभी धर्मों की समानता और राज्य द्वारा सभी धार्मिक समूहों से खुद को दूरी पर रखना, विशेष रूप से अल्पसंख्यकों को यह आश्वस्ति देने के लिए थे कि देश में उनका एक वैध स्थान है और उनके प्रति भेदभाव नहीं किया जाएगा। संगत रूप से, धर्मनिरपेक्षता ने यह स्थापित कर दिया कि बहुसंख्यक समुदाय को किसी भी तरह से कोई विशेषाधिकार नहीं मिलेगा। अतः धर्म मत ने ऐसे किसी भी दिखावे को हतोत्साहित किया कि बहुसंख्यक वर्ग के धर्म को अपने लोकाचार से राज निकाय पर छाप लगाने का कोई अधिकार है।

24.5 संविधान और धर्मनिरपेक्षता

भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता और सिविल समाज की धार्मिकता के बीच एक रचनात्मक मिश्रण है। भारतीय संविधान सभी नागरिकों से चाहे वे किसी भी जाति, मत, लिंग या धर्म से हों, समानता का व्यवहार करता है। अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है। इसके अनुसार "राज्य कानून के समक्ष किसी व्यक्ति को समानता के लिए या भारत के क्षेत्र के अंतर्गत उनके लिए कानूनों की समानता से इनकार नहीं कर सकता"। अनुच्छेद 15 में कहा गया है,

1) "राज्य किसी भी व्यक्ति से केवल उसके धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी एक के भी आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता।

2) कोई भी नागरिक केवल धर्म, जाति, लिंग जन्म स्थान या इनमें से किसी एक के भी आधार पर निम्नलिखित के संबंध में (क) दुकानों, सार्वजनिक रेस्टोरेंटों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन में जाने या (ख) ऐसे कुएँ, तालाब, नहाने की जगहें, सड़कें और सार्वजनिक आश्रय के स्थानों का प्रयोग करने जिनका पूरी तरह से या आंशिक रूप से राज्य की निधियों द्वारा रखरखाव किया जाता है या जो सामान्य जनता के प्रयोग के लिए समर्पित हैं; किसी अक्षमता, दायित्व प्रतिबंध या शर्तों के अधीन नहीं होगा" (इंज़ीनियर, ए.ए. 1995)।

इस भाँति, यह अनुच्छेद जाति भेदभाव को समाप्त करता है और अनुच्छेद 16 रोजगार के मामले में अवसर की समानता की गारंटी देता है। अनुच्छेद 25 से 30 धर्म, संस्कृति और भाषा की स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं। अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को अपनी शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करने के अधिकार की भी गारंटी देता है। 25 से 30 अनुच्छेद अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संबंध में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। यह अल्पसंख्यक धार्मिक या भाषायी कैसे भी हो सकते हैं।

यद्यपि हमारा संविधान धर्मनिरपेक्ष है, मूल रूप से धर्मनिरपेक्षता शब्द इसमें शामिल नहीं था। सत्तर के दशक के मध्य में आपातकाल के दौरान "धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी" शब्द जोड़े गए और भारत का वर्णन "धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी गणराज्य" कहकर किया गया। लेकिन धर्मनिरपेक्षता और धर्मनिरपेक्ष इन शब्दों को परिभाषित नहीं किया गया। एच.एम. शेरवाई की पुस्तक "कॅन्स्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इंडियां" के अनुसार "यह समझ कर कि "धर्मनिरपेक्ष" और "समाजवादी" शब्दों को परिभाषित करने की जरूरत है, 45वें संशोधन विधेयक (जो 44वाँ विधेयक बन गया) "धर्मनिरपेक्ष" और "समाजवादी" शब्दों की परिभाषाएँ सम्मिलित करके अनुच्छेद 366 के संशोधन का प्रस्ताव रखा"। परंतु राज्य परिषद द्वारा इस संशोधन को स्वीकारा नहीं गया। फलस्वरूप "धर्मनिरपेक्ष" और "समाजवादी" शब्द अपरिभाषित ही रह गए। परंतु इसके बारे में एक पाद् टिप्पणी प्रस्तावित सुधार की जानकारी देती है और धर्मनिरपेक्षता की यह परिभाषा देती है :

"संविधान के अनुच्छेद 366 का उस अनुच्छेद के खंड (2) के रूप में पुनःअंकन किया जाएगा और इस प्रकार अंकित खंड (2) से पहले निम्नलिखित खंड शामिल किए जाने चाहिए, जो ये हैं, (1) संविधान की प्रस्तावना में "धर्मनिरपेक्ष" अभिव्यक्ति का अर्थ है वह गणराज्य जिसमें सभी धर्मों के लिए समान आदर है (सीरावाइ, एच.एम., 1982)।

इस भाँति, हम देखते हैं कि धर्मनिरपेक्ष और धर्मनिरपेक्षता शब्द भारतीय संविधान में अपरिभाषित ही रहते हैं। भारतीय संविधान में "धर्मनिरपेक्षता" द्वारा निम्नलिखित अर्थ सूचित होते हैं कि :

1) राज्य, स्वयं किसी धर्म को समर्थित या स्थापित या उसका अनुसरण नहीं करेगा;

2) सार्वजनिक राजस्वों का प्रयोग किसी धर्म को संवर्धित करने के लिए नहीं किया जाएगा;

3) राज्य को यह अधिकार होगा कि वह धार्मिक आचरणों से संबंधित किसी "आर्थिक, वित्तीय या अन्य धर्मनिरपेक्षता गतिविधि को नियंत्रित करे (संविधान का अनुच्छेद 25 (2) (क));

4) राज्य को कानून द्वारा "सामाजिक कल्याण और सुधार उपलब्ध कराने या सार्वजनिक स्वरूप की हिंदू धार्मिक संस्थाओं को हिंदुओं के सभी वर्गों और समूहों के लिए खोल देने का अधिकार होगा" (संविधान का अनुच्छेद 25 (2) (ख);

5) अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता (छुआछूत) की पृथा (जहाँ तक यह हिंदू धर्म द्वारा न्यायोचित सिद्ध की जा सके वहाँ तक) संवैधानिक रूप से विधि बहिष्कृत है;

6) इस व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को विवेकबुद्धि और धर्म की स्वतंत्रता का समान अधिकार होगा;

7) तथापि, ये अधिकार "सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य" के आधार पर प्रतिबंधों को लागू करने के लिए, कानून द्वारा राज्य के अधिकार के अधीन हैं।

8) इसके अलावा ये अधिकार भाग III में अन्य मौलिक अधिकारों के अधीन भी हैं; और

9) न्यायालय, मांगलिक रूप से सर्वोच्च न्यायालय को उपर्युक्त सिद्धांतों के अधीन राज्य कार्यवाही को वैध या अवैध के रूप में निर्णय करने पर "मत व्यक्त करने का" अधिकार होगा।

इस समय तक, धर्मनिरपेक्षता की इन नौ विशेषताओं ने अपने पीछे राष्ट्रीय संवैधानिक बहुमत की चौथाई शताब्दी एकत्रित कर ली थी। 1976 से इन नौ विशेषताओं में अब सभी नागरिकों का एक मूल कर्त्तव्य (अनुच्छेद 51-ए (एफ) के अधीन जुड़ गया था जो यह था "हमारी सामूहिक संस्कृति की समृद्धिशाली विरासत को परिरक्षित करना"। यह कतर्व्य सभी नागरिकों (राजनीतिक दलों के नेताओं, और राज्य बल के सभी धारकों सहित) को संबोधित है और इसको उनका मूल दायित्व घोषित किया गया है। न तो राजनीतिक प्रक्रियाएँ और न ही अधिकार की प्रक्रियाएँ (न्यायिक अधिकार सहित) वैध होंगी अगर वे इस कर्त्तव्य का विरोध करेंगी। संविधान ने निस्संदेह राज्य और धर्म के बीच "अलगाव की दीवार" खड़ी कर दी है। धर्म की ओर से राज्य की तरफ तो कोई दरवाजे नहीं खुल रहे परतु राज्य की ओर से धर्म में कई दरवाजे खुल रहे हैं। यदि जन आदेश, नैतिकता और स्वास्थ्य के हित में यह माँग करते हैं, धर्म का विश्वास प्रकट करने, आचरण और प्रचार करने के अधिकार को भंग किया जाए, तो ऐसे धार्मिक सम्प्रदाय के अधिकार की भी माँग करते हैं जो धर्म से संबंधित इसके मामलों की देखरेख करे। यदि अन्य मौलिक अधिकारों का निष्पादन या सामाजिक कल्याण और सुधार की माँगे ये अपेक्षा करती हैं तो धर्म का विश्वास प्रकट करने, आचरण करने और प्रचार करने के अधिकार को भी भंग किया जाए।

इस भाँति, संविधान धार्मिक प्राधिकार और धार्मिक हितों के ऊपर धर्मनिरपेक्ष प्राधिकार धर्मनिरपेक्ष हितों की सर्वोच्चता को बाध्य करता है और इसका संकल्प करता है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि संविधान के अंतर्गत धर्मनिरपेक्षता एक अभिवृत्ति है, जीवन की एक शैली है जो संविधान द्वारा आंशिक रूप से समादेशित है और आंशिक रूप से सराहनीय। इसमें मूल्यों की ऐसी प्रणाली समाविष्ट है जिसमें समकालीन जनों के बीच और राज्य तथा नागरिकों के बीच के संबंध धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के पूर्वाग्रहों और निष्ठाओं से मुक्त है और आपसी सरोकार, सम्मानपूर्ण जीवन तथा जो ऐसे समाज के लिए संस्कृति द्वारा शासित हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र और समान है और जिसमें अंधविश्वासों के ऊपर विज्ञान और तर्क की तथा किसी विशेष वर्ग के प्रति प्रेम के ऊपर मानवता के प्रति प्रेम की विजय होती है।

24.6 निष्कर्ष

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि, भारत में धर्मनिरपेक्षता की जो संकल्पना उभरी उसमें तीन सारगर्भित घटक निहित थे :

- राज्य खुद को किसी एक धर्म से संलग्न नहीं करेगा, जो तदनुसार राज्य धर्म के रूप में स्थापित हो जाएगा।

- सभी नागरिकों को धार्मिक विश्वास की स्वतंत्रता था।
- राज्य यह सुनिश्चित करके कि एक धार्मिक समूह के साथ दूसरे की कीमत पर पक्षपात न किया जाए, सभी धार्मिक समूहों के बीच समानता को सुनिश्चित करेगा। संगत रूप से, अल्पसंख्यकों को पुनः आश्वासन दिया गया कि उनसे किसी भी रूप में भेदभाव नहीं किया जाएगा।

अतः, पहली दृष्टि में धर्मनिरपेक्षता निर्बल करने वाले धार्मिक संघर्ष को नियंत्रित करने, अल्पसंख्यकों को उनकी सुरक्षा के लिए आश्वस्त करने और ऐसी किसी भी आशंका को दूर रखने के लिए निर्मित की गई थी कि राज्य स्वयं को प्रमुख धर्म के साथ संबद्ध कर लेगा। पश्चदर्शन करें तो आश्चर्य नहीं होगा कि धर्मनिरपेक्षता भारतीय नेतृत्व के लिए आकर्षक सिद्ध हुई। इसका पहला कारण तो यह था कि ऐतिहासिक रूप से धर्मनिरपेक्षता पश्चिम में एक ऐसे फॉर्मूले के रूप में उभरी थी जो उन धार्मिक युद्धों को समाप्त करने के लिए बनाया गया था जिन्होंने सोलहवीं शताब्दी में यूरोप का सर्वनाश कर दिया । यह धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों के कारण ही था कि जो समुदाय धर्म के ऊपर युद्ध रत हो गए थे और जिन समाजों ने न्यायिक जाँच की पूरी अवधि के दौरान नास्तिकों को सताया था अब साथ रहना सीख सकें। भारत के सामने भी ऐसी ही समस्याएँ आईं। उपनिवेश विरोधी संघर्ष ने अलग और संभावित रूप से विभाजित समुदायों को केवल उपनिवेशिवाद के विरोध के लिए ही नहीं बल्कि एक दूसरे के विरोध के लिए भी उकसाया। इसने नए राष्ट्र की संबद्धता के लिए विशिष्ट आशंका उत्पन्न की। धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत का स्पष्टोच्चारण, एक ऐसा सिद्धांत जो इन पहचानों के विचारात्मक निर्माण से सर्वथा अलग था, लोगों को एक साथ सभ्यता में रहने देने के लिए बनाया गया था। इस तथ्य को धर्मनिरपेक्षता के समकालीन आलोचक भूल गए लगते हैं।

देश के लिए धर्मनिरपेक्षता का आकर्षण इस तथ्य में निहित था कि उपनिवेशी और उपनिवेश विरोधी अवस्था के दौरान जो विखंडित और ध्रुवीकृत पहचानें उभरीं और एक साथ इकट्ठी हुईं उनमें से एक राष्ट्र निर्मित करने के लिए धर्मनिरपेक्षता ही एकमात्र विवेकी विकल्प थी। भारत में, जहाँ रक्त रंजित बँटवारे के फलस्वरूप दो नए राष्ट्र, अर्थात् भारत और पाकिस्तान बने थे, वहाँ यह भुलाने की जरूरत थी कि वे लोग जो सदियों से एकसी ऐतिहासिक चेतना, एकसी भाषा और एकसे जनसमूह की साझेदारी करते थे, धर्म की वजह से अलग हो गए थे। अब इन विभाजित लोगों को नवीन विचारधाराओं, नवीन परिप्रेक्ष्यों और नवीन मुद्दों पर एकीकृत करने की जरूरत थी। यह मुद्दा केवल धर्मनिरपेक्षता ही हो सकती थी जिसने धार्मिक पहचानों को अपेक्षित् मान्यता दी और इसके बावजूद जहाँ तक सार्वजनिक क्षेत्र का संबंध था, उन्हें परे रखने का प्रयास किया। *राज्य अपनी जनता की धार्मिक पहचानों को पहचानने से इनकार नहीं कर सकता।* यह खराब राजनीति और खराब ऐतिहासिक जानकारी कहलाती। इसको जो करना चहिए वह था यह निर्दिष्ट करना कि *सभी धर्म सिद्धांततः समान थे।*

24.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

झींगरन, सरल, 1995, *सेक्युलरिज्म इन इंडिया*, पृ. 53.

एनसायक्लोपेडिया ऑफ रिलीजियन में "सेक्युलराइजेशन, संपादक मिर्सिआ ऐलीएड, अंक 13, पृ. 159.

नीरा चंदोक, 2004, रिप्रजेंटिंग द सेक्यूलर एजेन्डा फॉर इंडिया इन मुशीरूल हसन (संपादक).